तित्थयर

पंचदश वर्ष : मई १९९१ : प्रथम अंक

जैन भवन

आ. श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
जि गांधीनगर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १५ : अंक १
मई १९९१

☐

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सो एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

सूची

राम-यशो रसायन
(सचित्र रामायण) ३
युगप्रवर श्री जिनदत्त सूरि ५
जैन पुराण साहित्य १८
त्रिषष्टि शलाका पुरुष
चरित्र २१
संकलन २८
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३०

श्री देवकुमार जैन प्राच्य ग्रन्थागार, आरा, बिहार द्वारा प्रकाशित
सचित्र जैन रामायण का लोकार्पण करते हुए,
भारत के उपराष्ट्रपति श्री शंकार दयाल शर्मा अप्रैल ६, १६६१

राम-यशा-रसायन (सचित्र रामायण)

संक्षिप्त परिचय

श्री देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान आरा (बिहार) के जैन सिद्धान्त भवन संग्रह में रामायण की एक दुर्लभ सचित्र प्रति है जिसके लेखक हैं जैनाचार्य मुनि केशराज। लिपि और चित्रों की शैली को देखते हुए इसे १८ वीं शती के अन्त में अथवा उससे भी अधिक प्रामाणिक आधार पर १६ वीं शदी के अंतर्गत रखा जा सकता है। अनेक दृष्टियों से यह प्रति अलभ्य है। इसके प्रस्तोता की उदारवृत्ति और कला साहित्य का प्रतिपालन इसके प्रत्येक चित्रित पृष्ठ से स्पष्ट प्रदर्शित होता है। सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि नितांत समर्पण की भावना से न तो इसके प्रतिपालक ने अपना नाम दिया है, न चित्रकार ने। इन दृष्टियों से यह ग्रन्थ हमारी खोज का विषय बन जाता है।

ग्रन्थ का वर्णन "श्री जैन सिद्धांत भास्कर" नामक सुप्रसिद्ध शोध पत्रिका के जुलाई १९८६ (भाग ३९ सं० १) में डा० ऋषभ चन्द्र "फौजदार" जैनदर्शनाचार्य ने प्रकाशित किया है। जैन साहित्य में राम चरित बहुत लोकप्रिय रहा है। वहां वे "पद्म" के नाम से आते हैं अतः बहुत कुछ मूल रूप में वही राम कथा, यत्किंचित परिवर्तनों के साथ भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा "पद्मपुराण" या "पद्मचरित" यथा प्राकृत "पउमचरियं" के रूप में मिलती है। "हेमचंद्राचार्य" के त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित के सप्तम पर्व में भी यह कथा आती है। "पद्मपुराण" के कुछ हिन्दी संस्करण भी है जो "पद्मपुराण" भाषा के नाम से मिलता है। राम-यशो-रसायन-रास की हस्तलिखित प्रति में पत्र संख्या २२४ हैं जिसमें ६२ पन्ने अनुपलब्ध हैं। लेखक ने इसे प्रारम्भ में "रामायण" कहा है। प्रति में २१३ आकर्षक रंगीन चित्र हैं।

जैन आश्रयदाताओं ने ग्रन्थ लेखन, चित्रण को सतत् प्रोत्साहित किया, परन्तु इस प्रकार लिपिकारों और चित्रकारों का एक वर्ग ही विकसित हो गया जो सभी प्रकार के ग्रन्थों को निरंतर तैयार करता रहता था। एक प्रकार की नागरी लिपि बन गई थी जिसे हम जैन नागरी कह सकते हैं। यहाँ हमारा ध्यान सहसा जैन चित्रकारों के एक बहुत बड़े वर्ग की ओर जाता है जो विशेष रूप से पश्चिमी राजस्थान के मारवाड़ प्रदेश—जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर के थे। इनमें कुछ स्थायी रूप से 'गाँव-नगरों में रहते थे, बल्कि उनके

गाँव या मुहल्ले होते थे। वे गृहस्थ साधु के समान थे और उनका काम ग्रन्थ चित्र तैयार करना था। उनकी शैली इस प्रकार विकसित हुई थी। पर उसमें उनकी एक निश्चित परम्परा भी थी, अर्थात् उन्होंने मूल पश्चिमी राजस्थानी चित्रकला को और सघन बनाया एवं उसे सांकेतिक रूप दिये। आज भी उनके द्वारा चित्रित पत्रों की संख्या सहस्रों में ज्ञात होती है। इसके अतिरिक्त कितने पन्ने अज्ञात अवस्था में पड़े हैं अथवा नष्ट हो गये इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

प्रस्तुत ग्रन्थ चित्र कला प्रधान है। अतएव दृश्यों की निरन्तरता मिलती हैं। परम्परानुसार लेख्य अंश में यत्र-तत्र स्थान छोड़ दिये गये हैं, जिन्हें तदनुसार चित्रों से अलंकृत किया गया हैं। ये स्थान छोटे बड़े सभी प्रकार है। कहीं-कहीं एक पट्टी जैसी भी हैं जिसमें अत्यंत छोटे आकार में दृश्य हैं। यह एक पुरानी परम्परा है जो कम से ५०० ई० से जैन चित्रित ग्रन्थों में दिखती हैं, फिर यह पर्याप्त रूप में मिलती हैं।

इस प्रकाशित ग्रन्थ का प्राक्कथन तथा कलापक्ष की समीक्षा भारतीय कलाभवन, वाराणसी, हिन्दू विश्व विद्यालय के पूर्व निदेशक डा० राय आनन्द कृष्ण द्वारा की गयी है। इस ग्रन्थ का संपादन सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ ने किया हैं। सुप्रसिद्ध चित्रकार मु० फिदा हुसेन ने राम भक्त हनुमान के चित्र के माध्यम से अपने भावविभोर उद्गार प्रगट किये हैं।

श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा में संगृहित करीब ६००० दुर्लभ हस्तलिखित एवं ताड़पत्री ग्रन्थों में से प्रमुख ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत इस दुर्लभ एवं अमूल्य ग्रन्थ का प्रकाशन भारत सरकार के संस्कृति विभाग के सहयोग से संभव हो पाया हैं।

पुस्तक का साईज डिमाई/४, आर्ट पेपर, ११८ पृष्ठ, क्लोथ बाईंडिंग, प्लास्टिक कोटेड, डस्ट कभर। २१३ रंगीन चित्र। मूल्य ८५०·००.

प्रकाशक श्री देव कुमार जैन प्राच्य ग्रन्थागार देवाश्रम, महादेवा रोड, आरा, बिहार, ८०२३०१।

युगप्रवर श्री जिनदत्त सूरि

मुनि कान्तिसागर

समाज और राष्ट्र के निम्नस्तर को ऊँचा उठाने में महापुरुषों के जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। उनके जीवन का एक क्षण भी ऐसा नहीं जो मानव जीवन के उत्थान में सहायक न होता हो। प्राचीन आर्य्य संस्कृति और मुगलकालीन इतिहास तो स्पष्ट बता रहे हैं कि जनता को आत्मिक कर्त्तव्य की ओर आकृष्ट करने में इन महापुरुषों के जीवन जितने सफल हुए हैं उतने दूसरे साधन शायद ही सफल हों। वह समय बड़ा कसौटी का था। तत्कालीन ऋषि मुनि-वर्ग द्वारा किए हुए उत्सर्ग आज भी हमें पुनः जागृत कर रहे हैं। महान आत्माओं के क्रिया-कलाप, रहन-सहन और साहित्यिक प्रवृत्तियाँ मानव मस्तिष्क को परिपुष्ट कर अग्रिम उन्नति के लिए प्रेरित करती हैं। मानसिक चांचल्य मिटाकर अपूर्व शान्ति का अनुभव कराते हैं। दुष्कृत्य करने वाला मानव भी इन पुरुषों की जीवनी से अवश्य प्रभावित हुए बिना न रहेगा, क्योंकि महात्माओं के जीवन प्राचीन होते हुए भी नवीन भावनाओं के पोषक और परिवर्द्धक हैं।

वर्त्तमान भारत आत्मिक विभूतियों को भूला हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज भारतियों में अपने आदरणीय पूर्वजों के प्रति जैसा चाहिये वैसा सम्मान नहीं है। क्योंकि भारतीय भी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने से आत्मीय गौरव का भान कराने वाले तत्व बहुत कम अंशों में प्राप्त कर पाते हैं।

चीन में आज भी ऐसी प्रथा है कि वहाँ पर प्रत्येक गृहस्थ के घर में चाहे वह अकिञ्चन या श्रीमान् हो, एक स्थान या कोना नीयत होता है जहाँ पर अपने धर्म, परिवार या आदरणीय पूर्व पुरुषों की आकृतिवाली प्रतिमायें रखी जाती हैं। सारे परिवार के सदस्य दिन को नीयत समय में वहाँ एकत्रित होकर प्रार्थना, श्रद्धाञ्जलि या अन्य किसी रूप से स्मरण करते हैं। इस प्रकार आत्मगौरव गरिमा का आदर्श जीवन में उतारते हैं। यदि इसे कोई व्यक्ति भले ही रूढ़ि समझे, पर वास्तविक रूप से देखा जाय तो बालकों पर राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक विचार उतने सुन्दर रूप से अंकित हो जाते हैं कि यावज्जीवन नहीं भूल सकते हैं। कभी कभी रूढ़ियाँ भी हमें मौलिक कर्त्तव्य की ओर आकृष्ट करती हैं। अतः मानव जाति के उत्थान के लिए महापुरुषों का यश कीर्त्तन आवश्यक ही नहीं पर अनिवार्य है।

भारत में महापुरुषों के जन्म या स्वर्गारोहण के दिन उनके जीवन, प्रतिभा और साहित्य प्रवृत्ति आदि विषयों पर प्रकाश डालकर या और किसी प्रकार

से यशोगान करना ही जयन्ती का एक रूप है। कम से कम एक दिन भी यदि उनके जीवनगत तत्वों से प्रेरणा पाकर वर्ष तक कर्त्तव्य पर दृढ़ रहें तो भी पर्याप्त है।

कहा जाता है कि जब संसार सर्वांग रूपेण अशान्त वातावरण में विक्षुब्ध हो उठता है तब महापुरुष जन्म लेकर कष्ट परम्परा का उच्छेद कर शान्ति का राज स्थापित करते हैं। अतः हम समझते हैं कि सर्वप्रथम आचार्य महाराज के जन्म समय या इतःपूर्व भारतीय जैन समाज की परिस्थिति का अवलोकन कर लें, जिससे एक प्रकार की विषय को स्पष्ट करने वाली मानसिक पृष्ठभूमि तैयार हो जाय।

श्रमण संस्कृति में विकृति : भारतीय संस्कृति को जैन श्रमणों ने अपने साँचे में ढाल अधिक से अधिक प्रचार कर लोक भोग्य बनाने का आदरणीय प्रयत्न किया है। जैसा कि उनके द्वारा विनिर्मित साहित्य से फलित होता है। श्रमणों का चरम लक्ष्य था आध्यात्मिक विकास, अतः उन्होंने अनेक प्रकार के प्रयत्न कर अपना मार्ग प्रशस्त बनाया। एक समय सम्पूर्ण भारत श्रमण-संस्कृति से प्रभावित था। भगवान महावीर ने ईसवी पूर्व छठी शताब्दी में अहिंसा और सत्य का महान् सन्देश सुनाया। भगवान की क्रान्तिकारी विचारधारा का इतना सुन्दर असर हुआ कि धर्म के नाम पर होने वाले भीषण अत्याचार रुक गये, परन्तु नीव का भी समय होता है। सत्य, अहिंसा और सच्चरित्रता से सम्पन्न संस्कृति भी समय के प्रवाह में बह गई या विकृत हो गई। परिवर्तनशीलता ही संसार का चिरस्थायी सिद्धान्त है। विक्रम की प्रथम शताब्दी में भारतीय इतिहास में अनेक परिवर्तन हुए, जैन धर्म भी इससे बच नहीं सका। इस समय मुनि धर्म में कुछ शैथिल्य अवश्य आ गया, जो आगे चलकर चैत्यवास के रूप में परिणत हो गया।

चैत्यवास की प्रारम्भिक अवस्था का स्पष्ट प्रमाण अनुपलब्ध है, तो भी इतना तो हम बिना किसी संकोच से कह सकते हैं कि वज्रस्वामी के समय में चैत्यवास का आभास मिलता है। विक्रम की प्रथम शताब्दी में आचार्य श्री पादलिप्तसूरिजी के समय में चैत्यवास का अस्तित्व स्पष्ट विदित होता है। तदनन्तर विशेष उन्नत हो गया। आचार्य महाराज श्री हरिभद्र सूरिजी के समय में चैत्यवासियों का प्राबल्य था। अतः आचार्य श्री ने अपने सम्बोध प्रकरण में इन लोगों पर भीषण शाब्दिक प्रहार कर जैन श्रमण संस्कृति को कलंकित होते बचा लिया। चैत्यवासियों का आचरण जैन धर्म के मुनिधर्म के अनुसार बिलकुल नहीं था, पर सर्वथा विपरीत था। जैन मन्दिरों में निवास करना,

ताम्बूल भक्षण, तेल, इत्र आदि शृङ्गारिक साधनों का उपभोग छूट से करते थे। विद्वान् होने के नाते राज-दरबार में वाहन के द्वारा जाते थे। आचार-विचार आदि सर्वथा भ्रष्ट—पतित थे, पर राजस्थान और गुजरात की राजधानी पाटन आदि स्थानों में इनका इतना प्रभुत्व था कि किसी भी सुविहित मुनियों को शहरों में आने तक नहीं दिया जाता था। क्योंकि वे अपने को ही उत्कृष्ट मुनि घोषित करते थे। इस प्रकार भीषण धार्मिक अत्याचार बढ़ जाने पर खरतरगच्छ के आचार्यों ने क्रान्तिकारी विचार और आन्दोलन कर उनपर विजय प्राप्त किया। आज के यति समाज को यदि हम आंशिक-रूपेण चैत्यवासियों के अवशेष कहें तो अनुचित न होगा।

क्रान्ति : उपरोक्त परिस्थिति के अवलोकन से विदित होता है कि वह समय महान् क्रान्ति का था। आज हमारे कतिपय मनुष्य अपेक्षित ज्ञान की अपूर्णता के कारण क्रान्ति शब्द से ही भयभीत हो रहे हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं कि संसार की मानव-जाति का और जैन-धर्म के उत्थान-पतन का इतिहास ही क्रान्ति का इतिहास है, क्योंकि मानव एक बुद्धिजीवी प्राणी है, मानसिक जीवन ही मानव जीवन की मौलिकता है। जहाँ इस प्रकार का जीवन यापन किया जा रहा है वहाँ विचार ही की परमावश्यकता है और कहना चाहिये कि विचार में भी महान् क्रांति निहित है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि मानव जाति का उत्कर्ष अपकर्ष-अवलम्बित है उसकी क्रान्ति पर।

विक्रम की आठ से बारहवीं शताब्दी का समय क्रान्ति का समय है। उस युग में जैनधर्म की उन्नति अवश्य थी पर अन्तर्व्यवस्था चिन्तनीय थी। इसी से तत्कालीन जैनाचार्यों को मजबूर होकर क्रान्ति का अवलम्बन करना पड़ा। सर्वप्रथम हरिभद्रसूरिजी महाराज ने सम्बोध प्रकरण में चैत्यवासियों के विरुद्ध आवाज उठाई। बाद में आचार्य महाराज श्री जिनेश्वरसूरिजी और बुद्धिसागरजी चौलुक्यवंशीय महाराज दुर्लभ की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित कर खरतर विरुद प्राप्त किया। आपकी सन्तान तभी से खरतरगच्छीय नाम से विख्यात है। इस प्रतिवाद का इतना गहरा असर पड़ा कि चैत्यवासियों का एकछत्र राज भंग हो गया। बाद में श्री जिनवल्लभसूरिजी ने उन लोगों से टक्कर ली। आपने इस क्रान्ति में अनेक प्रकार के कष्ट और यातनाएँ सहन की। तदनन्तर श्री जिनचन्द्र सूरि, श्री जिनपति सूरि आदि खरतरगच्छीय आचार्यों ने चैत्यवासियों की मान्यताओं के विरुद्ध अनेक नूतन ग्रन्थ, टीकाएँ निर्माण कर जैन संस्कृति को

अर्द्धलुप्त होते-होते बचा लिया। आज जैनमुनि जो नगर निवास कर रहे हैं वह उपरोक्त आचार्यों के महान् परिश्रम का ही सुफल है।

जन्म : आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरिजी का जन्म गुजरात प्रान्त के धवलकपुर (धौलका) ग्राम के हुबड़ वैश्य कुलोत्पन्न मन्त्री श्री वाछिग की धर्मपत्नी बाहड़ देवी की रत्नकुक्षी से विक्रम सम्वत ११३२ में हुआ था। धर्मदेव उपाध्याय ने प्रतिभावान असाधारण बालक को देखकर उसकी माता से बालक के श्रीसम्पन्न गुणों की चर्चा की तथा विश्व हितार्थ उसे दीक्षित बना लेने की अनुमति माँगी। भक्ति-सिक्त हृदयवाली माता ने संसार के कल्याणार्थ मातृहृदय में बल संचित कर बालक को दीक्षित होने की आज्ञा दे दी। सम्वत् ११४१ में उपाध्याय धर्मदेव ने नौ वर्ष के उस बालक को दीक्षा देकर सोमचन्द्र नाम से विभूषित किया, इनकी बाल्यकाल की प्रतिभा एक आदर्श विद्वान को सुशोभित करती थी। आप क्रमशः व्याकरण, न्याय, अलङ्कार, ध्वनि, काव्य आदि शास्त्रों का अध्ययन कर एवं हरिसिंहाचार्य के पास जैनागम सिद्धान्त की वाचना ग्रहण की। कहा जाता है कि उक्त आचार्य श्री ने प्रसन्न होकर आपको स्वमन्त्र-पुस्तिका अर्पित की। आपके बालशिक्षक सर्वदेवगणि थे।

तत्कालीन राजनैतिक स्थिति : जिस समय जैन धर्म के युग-प्रवर भारतवर्ष में अवतीर्ण हुए थे, उस समय का राजनैतिक वातावरण भी यदि हम थोड़ा जान लें तो उस पृष्ठभूमि पर इन का चित्र और भी प्रभावोत्पादक हो जावेगा। श्री जिनदत्तसूरिजी ने ईसवी सन् १०७५ से ११५४ (वि० स० ११३१ से १२११) के मध्य के समय को सार्थक किया था। इसी समय के बीच में काश्मीर में ईसवी सन् १०६३ से ११५० तक कलश, हर्ष और जयसिंह नामक तीन राजा हुए। जयसिंह के राजत्वकाल में इनकी राज सभा के मान्य पण्डित राजानक रुय्यक ने 'अलंकार सर्वस्व' नामक ग्रन्थ निर्माण किया। कन्नोज में राठौड़ वंशी राजा राज्य करते थे। श्री जिनदत्तसूरिजी के समकालीन गोविन्दचन्द्र ११०४ सन् से ११५५ तक पांचाल के राजा थे। 'नैषध काव्य' तथा 'खण्डन खण्ड खाद्य' वेदान्त ग्रन्थ के प्रणेता श्रीहर्ष इन्हीं के सभापति माने जाते हैं। जयचन्द्र, संयोगिता के पिता इनके पौत्र थे। पृथ्वीराज के साथ इन जयचन्द्र के वैमनस्य के कारण भारतवर्ष को विदेशी राजत्व का अनुभव आज तक करना पड़ रहा है। बुन्देल त्रिखण्ड में चंदेल राजा कीर्तिवर्मा ने सन् १०४६ से ११०० तक राज्य किया। इस समय तत्समीपवर्ती त्रिपुरी में कलचूरि नरेश कर्ण का साम्राज्य था। इनके अन्तिम

समय में जिनदत्तसूरि पचीस वर्ष के रहे होंगे। इन्हीं के समय में श्रीकृष्ण मिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय नाटक लिखा और सन् १०६५ में कीर्तिवर्मा के राजदरबार में उसका अभिनय हुआ। बंगाल और बिहार में पाल वंशीय राजा रामपाल बड़े प्रतापी थे। सन् १०८४ से ११३० तक उन्होंने राज्य किया। सन् १०८४ ही में सोमचन्द्र को दीक्षा दी गयी थी। राजा रामपाल की मृत्यु के समय जिनदत्तसूरिजी ५५ वर्ष के रहे होंगे। इस काल में मगध में बौद्धों का प्राधान्य था।

पालवंशीय राजाओं की सीमा के भीतर ही एक भाग पर अधिकार करके सामन्त देव के पौत्र तथा हेमन्त सेन के पुत्र विजयसेन ने सेन वंश का साम्राज्य स्थापित किया। सामन्तदेव दक्षिण से आये हुए थे, तथा मयूरभंज रियासत के कसियार में पिता पुत्र ने एक छोटा सा राज्य स्थापित किया था। सन् ११०८ के पूर्व ४२ वर्ष तक विजयसेन ने राज्य किया। इस समय तक श्री जिनदत्तसूरी ३३ वर्ष के रहे होंगे। ११०८ के आस पास विजय सेन के पुत्र बल्लाल सेन ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। नवद्वीप (नदिया) के विद्यापीठ का शिलान्यास इन्होंने ही किया था। शैलवंशीय राजा ब्राह्मण थे, और इन्होंने वर्णाश्रम धर्म की सुदृढ़ स्थापना बंगाल में की। सन् १११९ में इनके पुत्र लक्ष्मण सेन गद्दी पर आये और इन्होंने ८० वर्ष राज्य किया। इनके राजत्व काल में प्रथम ३५ वर्षों में श्री जिनदत्त सूरि राजपूताना में धर्मविस्तार कर रहे थे। गीतगोविन्दकार महाकवि जयदेव इनकी सभा के पंचरत्नों में थे। लक्ष्मण सेन का दरबार भागीरथी के तट पर नवद्वीप में लगता था। नवद्वीप के विद्यापीठ की इन्होंने बड़ी उन्नति की। भारतीय न्याय शास्त्र के इतिहास में रघुनाथ शिरोमणि का स्थान ऊँचा है वे यहीं के विद्वान् थे, और गौरांग महाप्रभु चैतन्य देव ने इस नगर को पावन किया था।

श्री जिनदत्तसूरिजी के समय में दक्षिण भारत में कल्याणी चालुक्य वंशका राज्य था। निजाम राज्य के गुलबर्गा के पास कल्याण नामक शहर इसी वंश की राजधानी थी। श्री जिनदत्तसूरिजी के जन्म के दश वर्ष पश्चात् सन् १०७६ में कल्याणी चालुक्य विक्रमाङ्क (विक्रमादित्य षष्ठ) सिंहासनारूढ़ हुए। सन् ११२७ तक ये राज्य करते रहे। इस समय तक श्री जिनदत्त सूरिजी की अवस्था ५२ वर्ष की थी। विक्रमाङ्क के पुत्र सोमेश्वर तृतीय ११२७ से ११३८ तक राज्य करते रहे। यहाँ तक सूरिजी ६३ वर्ष के थे।

श्री जिनदत्तसूरिजी के जन्म के एक वर्ष पूर्व ही सन् १०७४ में दक्षिण में चोलवंशीय राजाओं में अन्तिम राजा अधिराजेन्द्र के समय तक विशिष्टाद्वैत

मत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य इस शैव राजा के साथ मैसूर ही में रहे। इसके बाद अन्यत्र चले गये।

इसी समय मैसूर के होयल वंशीय राजा जैन धर्म के आश्रयदाता थे। प्रथम नरेश बिट्टिदेव ने सन् ११११ से ११४१ तक का राज्य किया। यह समय श्री जिनदत्तसुरिजी के ३६ वें वर्ष से ६६ वें वर्ष तक का है। इनके मन्त्री गंगराज ने जैनधर्म को आश्रय दिया।

श्री जिनदत्तसूरि जी के सम-काल में कलिङ्ग के पूर्वगंग राजाओं में से अनन्तवर्मा राज करते थे। इनका राजत्वकाल सन् १०७६ से ११४७ तक है। सूरिजी के द्वितीय वर्ष से ७२ वें वर्ष तक अनन्त वर्मा राज्य करते रहे। उड़ीसा का सुप्रसिद्ध एतिहासिक मन्दिर इन्हीं के समय बनवाया गया। श्री जिनदत्तसूरिजी के समय से जगन्नाथ के मन्दिर का समय भी सम्बद्ध है।

इसके उपरान्त श्री जिनदत्तसूरि की जन्मभूमि तथा उनके प्रथम कर्मक्षेत्र गुजरात के समकालीन राजनैतिक वातावरण पर भी निश्चित ध्यान देना आवश्यक होगा। वैसे तो विहार क्रम से सूरिजी गुजरात से नागपुर इत्यादि स्थानों में आये थे। परन्तु इनकी प्रधान कर्मभूमि गुजरात, सिंध और मरुभूमि ही है। गुजरात में चौलुक्य राजाओं का शासन विक्रम की सप्तम् शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गया था। पर आठवीं शताब्दी में सिंध के अरब सरदार के आक्रमण से इस वंश की शक्ति कम हो गयी थी। दशवीं शताब्दी के अन्त में सन् ९६१ से बारहवीं शताब्दी के मध्य भाग ११४२ तक अणहिलवाड़ पट्टन में चौलुक्य वंशीय राजाओं ने गुर्जरभूमि पर शासन किया। ईसवी सन् ७२० के लगभग अणहिलवाड़ पट्टन को गुजरात की राजधानी बनने का अवसर मिला था। चौलुक्य वंशी प्रायः सभी राजाओं ने जैनधर्म को महान् आश्रय दिया। साथ ही साथ प्रचार के सभी साधन सुलभ कर दिये। श्री जिनदत्त सूरिजी के समय में इस वंश के राजा कर्ण सन् १०६४ से १०९४ तक राज्य करते थे। सन् १०९४ सूरिजी की अवस्था १९ वर्ष की थी। इस समय इन्हें सोमचन्द्र नाम से विभूषित हुए दस वर्ष हो चुके थे, क्योंकि सन् ११७४ में ही नौ वर्ष की अवस्था में दीक्षा दी गयी थी। सिद्धराज जयसिंह गुजरात के महान् सम्राट् और कर्ण के पुत्र थे। इन्हें शिल्पस्थापत्यकला से बहुत प्रेम था। गुजरात के इतिहास में इनका स्थान अत्यन्त उच्च है। प्रसिद्ध पण्डित हेमचन्द्राचार्य इनके सभा के प्रधान पण्डित थे, जो जैनधर्म में कलिकाल सर्वज्ञ नाम से विख्यात है। वाग्भटालंकार के रचयिता विख्यात वाग्भट इनके महामात्य थे।

इन्हीं की राजसभा में श्वेताम्बर जैन आचार्य, अनेक ग्रन्थ निर्माता, वादिदेवसूरि और कर्णाटक के दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदचन्द्र में सफल शास्त्रार्थ हुआ था। जयसिंह सिद्धराज का शासन काल सन् १०९४ से ११४३ तक का था। यह समय श्रीजिनदत्तसूरिजी के वय से उन्नीसवें वर्ष तक का था।

जयसिंह सिद्धराज के पश्चात् उनके भतीजे कुमारपाल पचास वर्ष की अवस्था में राजा हुए। इनका राज्य काल सन् ११४३ से ११७४ तक का था। इनके प्रधान उपदेशक हेमचन्द्राचार्य जी थे। कपर्दी तथा वाग्भट्ट इनके अमात्य थे। इन कुमारपाल के समय में ही सूरिजी का स्वर्गारोहण हुआ।

भारतवर्ष की इस ऐतिहासिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि पर इस प्रधान नायक और अपभ्रंश भाषा में साहित्य रचना करने वाले श्री जिनदत्तसूरिजी का चित्र अंकित है। इन राजओं में से बहुतों पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष स्वरुप से सूरिजी का प्रभाव अवश्य ही पड़ा होगा। इनके द्वारा प्रसारित उपदेशों का प्रभाव तो प्रत्येक पर पड़ा ही होगा क्योंकि मानव धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों के उपदेशक ये महात्मा लोग हुआ करते थे।

महत्वपूर्ण कार्य : मुनि सोमचन्द्र ने विभिन्न स्थानों में जाकर जैन धर्म का प्रभाव विस्तीर्ण किया। दीक्षा लेने के २८ वर्ष बाद आचार्यवर्य्य श्री जिनवल्लभ सूरिजी के स्वर्गारोहण होने पर श्री देवभद्राचार्य ने इनकी तपश्चर्य्या और प्रतिभा की शक्ति देख कर उक्त सूरिजी के पद पर उन्हें श्री 'जिनदत्त सूरि नाम से अभिषिक्त किया। आचार्य महाराज ने त्याग और उग्र प्रतिभा से श्रावकों के हृदय पर अपना पवित्र और पूर्ण अधिकार स्थापित कर उन्हें आदर्श श्रावक बनाने में भी पूरी सफलता प्राप्त की।

क्रान्तिकारी जैनाचार्य ने अपने जीवन में इतने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं जिनके उल्लेख यदि किये जाँय तो एक ग्रन्थ बड़ी सरलता पूर्वक तैयार हो सकता है। पर उसका यह स्थान नहीं है।

हम तो आप लोगों से यही कहेंगे कि युगप्रवर ने सारे जीवन में एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य किया जैसा आज तक किसी भी जैनाचार्य ने एक ही समय में न किया होगा, वह कार्य एक लक्ष तीस हजार राजपूतों को प्रतिबोध देकर जैन धर्म में दीक्षित करना। ओसवाल समाज में ऐसी वृद्धि का कोई उदाहरण और नहीं मिलता। रत्नप्रभसूरिजी के विषय में कहा अवश्य जाता है है पर यह बात अभी काफी अपरिष्कृत है। इस घटना से आज के जैन समाज को शिक्षा ग्रहण करना चाहिये। आज यदि कोई जैन बनता है तो समाज अपनाने को तैयार नहीं। बल्कि जैनों को भी जो अपना प्रगतिशील विचार

रखते हैं चुन-चुन कर बाहर करने की कुत्सित् भावना रखी जा रही है। यह जैनधर्म पर कम अत्याचार नहीं है। जैनों का कोई ठेका नहीं है कि जैन को वणिक के यहाँ जन्म लेना ही होगा। जैनधर्म के महान् प्रचारक भगवान् महावीर तो जातिवाद के भयंकर विरोधी थे। उनका अभिमत था कि जो व्यक्ति जैनधर्म को ग्रहण करेगा वही जैन है, आप अपनी संकुचित मानस भूमि में से बाहर आ कर देखें कि हरिकेसी मुनि किस जाति के थे? धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है न कि कोई खास कुल से।

वास्तव में यदि आप जिनदत्तसूरिजी के गुणों का यशोगान करना चाहते हैं तो कम से कम एक गुण को तो अपने जीवन में कुछ अंश में उतारिये। आचार्यवर्य्य के अपूर्ण कार्य को तो आगे बढ़ाइये। उदाहरणार्थ शिखरजी महातीर्थ की यात्रा करके, झरीया, आदि नगरों से विहार करते समय अनेकों सराकों से हमें मिलने का अवसर मिला था, वे भी किसी समय चुस्त जैन थे। पर बाद में साधन और संस्कारों के अभाव में जैनधर्म से विमुख हो गये। परन्तु आज सौभाग्य तो इस बात का है कि वे अभी तक अपने आचार विचार में जैन धर्म का अंश बनाये हुए हैं। बंगाल जैसे मत्स्यभक्षक देश में रह कर बाल-बाल ऐसे खाद्य से बचना यह तो पूर्व के प्रबल संस्कारों का ही सुफल समझना चाहिये। उनकी नसों नसों में अभी तक जैन धर्म का रक्त बह रहा है वे अपने को जैन कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं, परन्तु इनको जैन धर्म में दीक्षित और शिक्षित करने के लिए केवल एक जैनधर्म प्रचारक सभा ही कार्य कर रही है, परन्तु जानतिक सहयोग बहुत ही अल्प मिलता है। जैन धर्म के पालन करने वाले यहाँ पर साधर्मिक वात्सल्य को सर्वथा भूल जाते हैं। सच्चे अर्थों में यदि आप स्वामीवात्सल्य करना चाहते हैं तो इन सराकों को गले लगाइये। इनकी उच्च शिक्षा के लिए प्रबन्ध कीजिये। कोई भी मनुष्य नये धर्म में दीक्षित होता है तो उसमें द्विगुणित उत्साह आ जाता है और वह कुछ कर भी सकता है। यदि ५० सराकों के लड़के पढ़-लिखकर ग्रेजुएट हो गए तो निस्सन्देह जैन धर्म की बड़ी भारी सेवा कर सकेंगे। परन्तु जैन समाज की एतद्विषयक उदासीनता बड़ी अखरती है। कहना पड़ता है कि आज के युग में भी जैनों ने समय धर्म को नहीं पहिचाना।

नरेशों को प्रतिबोध : एक समय था जब जैनाचार्य आत्मत्याग और प्रतिभा के बल पर न केवल श्रावकों पर ही प्रभाव रखते पर बड़े-बड़े नरेशों के हृदय पर भी उनका साम्राज्य रहता था। ,वे राजा भी प्रथम कोटि की अत्याचारी और जानतिक रक्तशोषण की मशीन न थे, पर प्रजावत्सल और

शान्ति के उपासक थे। उनके हृदय निर्मल थे, शान्त थे और आगे बढ़कर कहा जाय तो सर्वथा निरभिमानी ही न थे पर भारतीय आर्य-संस्कृति के पोषक, प्रचारक और रक्षक थे। त्रिभुवन गिरि के कुमारपाल और अजयमेरु—अजमेर के चौहान वंशीव आनल्ल देवादि चार राजाओं को श्री जिनदत्तसूरिने प्रतिबोध दिया था। तत्काल में मरुभूमि में आपका प्रभाव केवल राज्याश्रय से ही न था पर अपनी चारित्रिक सम्पति से था, इसी के बल पर आपने उनको साध्य कर लिया था।

समकालीन सूरि : श्री जिनदत्तसूरिजी महात्माओं का एक प्रवाह लेकर अवतीर्ण हुए थे। यद्यपि तत्काल में अधिक संख्या हिन्दू नरेशों की थी पर वे सोमनाथ के युद्ध में गजनवी द्वारा विजित हो चुके थे। इसीलिये असत्य के बाद सत्य और अहिंसा का प्रचार करने के लिए जैन महापुरुषों की यह मन्दाकिनी बह पड़ी थी, जिनका प्रभाव न केवल हिन्दुओं पर ही पड़ा पर प्राणीमात्र प्रभावित हुए। हेमचन्द्रसूरि, वादिदेवसूरि, देवभट्टाचार्य, बालचन्द्रसूरि, वीराचार्य, अमरचन्द्रसूरि आदि अनेक विद्वान समकालीन आचार्य थे। इन्होंने भारतीय संस्कृति के गौरव को बढ़ाने वाले अनेक नूतन मौलिक, संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंशादि भाषाओं में ग्रन्थ रचना की, जिनपर आज का पाश्चात्य समाज मुग्ध है।

युगप्रवर की साहित्यिक रचनाएँ : प्रायः प्रत्येक युग के युगप्रवर अद्वितीय प्रतिभा लेकर ही अवतीर्ण होते हैं। सूरिजी भी प्रतिभा की अतुल सम्पत्ति लेकर ही अवतीर्ण हुए। आचार्य महाराज के पूर्व, समकालीन एवं परवर्ती सब युगप्रवर, प्रतिभा सम्पन्न, कवि तथा श्रेष्ठ व्याख्याता और दार्शनिक हुए। इन सब में जिनदत्तसूरिजी अपना स्वतन्त्र स्थान रखते हैं। समय का प्रभाव साहित्य और कला पर अवश्य पड़ता है। तत्कालीन धार्मिक संस्कृति का दिग्दर्शन तो ऊपर हम कर चुके हैं, तदनुसार इनकी साहित्यिक रचना अधिकतर धार्मिक ही है, पर भाव और भाषा विज्ञान के श्रेष्ठतम नमूने हैं। उस समय का धार्मिक स्वरूप सुन्दर भावों के साथ मूर्तिमन्त करते हैं। साथ ही साथ इसी प्रतिभा के बल पर युगप्रवर ने गुजरात और मरुभूमि में धार्मिक स्रोतस्विनी का उज्ज्वल एवं शीतल प्रवाह प्रवाहित कर प्रत्येक मानव के हृदय को करुणासिक्त करने में सफलता प्राप्त की। आपकी महान साहित्यिक सम्पत्ति इस प्रकार हैं :

स्तुत्यात्मक ग्रन्थ : गणधर सार्द्धशतक, गणधर सप्ततिका, सर्वाधिष्ठायी स्तोत्र, सुगुरुपारतन्त्र्य स्तोत्र, विघ्नविनाशी स्तोत्र, श्रुतस्तव, अजित शान्ति

स्तोत्र, पार्श्वनाथ मन्त्र गर्भित स्तोत्र, चक्रेश्वरी स्तोत्र, योगिनी स्तोत्र, सर्व जिन स्तुति, वीरस्तुति ।

औपदेशिक एवं आचरण विषयक : सन्देह दोहावली, उत्सूत्र पदोद्घाटन कुलक, चैत्यवन्दन कुलक, उपदेशधर्म रसायण, कालस्वरूप कुलक चर्चरी ।

फुटकर : अवस्था कुलक विंशिका, शान्तिपर्व बाड़ी कुलक, आध्यात्म-गीतानि आदि ।

उपरोक्त सभी ग्रन्थों का साहित्यिक महत्व क्या है ? इसकी आलोचना का यह स्थान नहीं, परन्तु इतना तो हम बिना किसी प्रकार के संकोच से कह सकते हैं कि साहित्य और समालोचना के विकास के इतिहासों में भी सूरिजी का युग आदर्श पर पहुँचा हुआ था । वाग्देवता के अवतार माने जाने वाले साहित्यालोचक मम्मट जो साहित्यिक रचनाओं में इसको प्रधानत्व देते हैं समकालीन हैं । मम्मटाचार्य के साहित्यिक लक्षण सूरिजी के ग्रन्थों पर कुछ अंशों में प्रभाव डालते हैं । सूरिजी के ग्रन्थ पद्य में होने से विशेष उपादेय हैं और कविताबद्ध होने के कारण प्रचारण कार्य में भी सुविधा रहती है ।

अपभ्रंश भाषा के कवि : प्रत्येक समय में जैन साहित्य के रचयिताओं ने लोकभाषा का समादर किया है । अपभ्रंश भाषा एक समय में भारत की उन्नतिशील प्रधान भाषा मानी जाती थी । उच्च कोटि के विद्वान इसकी रचना करने में अपने को गौरवान्वित समझते थे । परन्तु इस भाषा के साहित्य भण्डार को जितना परिपुष्ट जैन मुनियों ने किया है, उसका शतांश भी किसी दूसरे ने नहीं किया, क्योंकि अन्य विद्वान् अपभ्रंश लोक-भाषा होने से साहित्यिक रचना में व्यवहार करना शायद अपना अपमान समझते हों ।

आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरि का स्थान हिन्दी और अपभ्रंश भाषा के इतिहास में महत्वपूर्ण है । आपने इस भाषा में रचना कर प्राचीन हिन्दी भाषा विज्ञान पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है । परन्तु बड़े ही दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अद्यवधि प्रकाशित सभी हिन्दी साहित्य के इतिहासों में, भाषा विज्ञान विषयक ग्रंथों में इनका नाम तक नहीं है । हम मानते हैं कि हिन्दी साहित्य का अन्वेषण बहुत कम हुआ है और हिन्दी भाषा विज्ञान पर तो सार्वभौमिक प्रकाश शायद ही किसी ने डाला हो । आचार्य महाराज का अपभ्रंश भाषा में ग्रन्थ रचना का काल, हिन्दी के वीरगाथा काल से कुछ पूर्व का है । हिन्दी साहित्य काल में वीरगाथा काल का स्थान ऊँचा है । कई लोग वास्तव में इस काल के ग्रन्थों को उतना ही प्राचीन मानते हैं, पर तत्कालीन जैन साहित्य और भाषा विज्ञान की कसौटी पर यदि

उन ग्रंथों को रखें तो निसन्देह कुछ ग्रंथ अवश्य फेल होंगे ऐसा हमारा निश्चित मत है।

चर्चरी, काल स्वरूप और उपदेश रसायन ये तीनों ग्रन्थ पद्य में अपभ्रंश भाषा में गुम्फित हैं। इन ग्रंन्थोंका विशेष महत्व इसलिये है कि अपभ्रंश-भाषा के अन्तिम काल और हिन्दी के प्रारम्भिक काल याने वयःसन्धि कालीन रचनायें होने से, प्राचीन हिन्दी भाषा विज्ञानकी अपेक्षा से बहुत ही मूल्यवान है।

युगप्रवर और राष्ट्रभाषा : आचार्य महाराज के साहित्य की उपरोक्त विवेचना से विदित होता है कि वे जानतिक भाषा के बड़े समर्थक थे। सम्पूर्ण जैन-साहित्य को यदि हम भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट हो जायगा कि जैन श्रमणों ने समय-समय पर विद्वद्भोग्य साहित्य निर्माण के साथ जानतिक लोक-भाषा में भी प्रचुर परिमाण में साहित्य रचना कर साधारण जनता के मस्तिष्क को उच्च बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। क्योंकि समयानुसार प्रचलित भाषा में जो अपने सिद्धान्तों तथा विचारों का प्रचार नहीं करता उसे बुद्धिमान कहने में हमारा मानस संकोच का अनुभव करता है।

आचार्य महाराज के समय में अपभ्रंश भाषा का प्रचार खूब हो चला था। अपने सदुपदेशों को जनता के हृदय में सजीव बनाने के लिये आत्मिक रचनाएँ इसी भाषा में की। माधुर्य, उच्चारण सौकर्य के दो लक्षणों से विभूषित प्रकृति में संस्कृत की अपेक्षा से पालि तथा प्राकृत भाषाओं का श्रेष्ठत्व विशेष स्थापित किया। प्राकृत और अपभ्रंश की विख्यात मधुरता सूरिजी के शब्दचयन की विशेषता है। हमारी अभिलाषा है कि आचार्य महाराज के अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों पर आलोचनात्मक प्रकाश डालने का निकट भविष्य में प्रयत्न अवश्य करेंगे।

आचार्य श्री की साहित्यिक सम्पत्ति से इतना आदर्श तो अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये कि कम से कम जैन साहित्य को जहाँ जनता की जैसी भाषा हो उनकी भाषाओं में अनुवादित या मौलिक ग्रन्थ निर्माण करवा कर वितरण करें। आज का युग सामयिक साहित्य चाहता है। यदि उसे समयानुकूल साहित्य न मिला तो निःसन्देह ज्ञानपिपासा शान्ति का और मार्ग खोजेगा, क्योंकि प्रत्येक देश का सांस्कृतिक उत्थान तत्कालीन लोक भाषा के साहित्य के प्रचार पर निर्भर है। आज राष्ट्रभाषा के पद पर हिन्दी भाषा अधिष्ठित है और वह है भी सर्वथा उपयुक्त, क्योंकि हम अपने सांस्कृतिक विचार, जितनी सरलतापूर्वक इस भाषा में व्यक्त कर सकेंगे या समझ सकेंगे वह अन्य भाषाओं द्वारा असम्भव नहीं पर कठिन अवश्य है। जहाँ प्रत्येक विषय के साहित्यप्रेमी

अपनी तृष्णा शान्त कर सकते हैं। जैन मुनियों ने भी हिन्दी-निर्माण में महान सहायताएँ प्रदान की हैं, परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि किसी भी हिन्दी भाषा के इतिहासकार ने उनके नाम का उल्लेख तक करना न जाने क्यों आवश्यक नहीं समझा।

तत्कालीन जैनों का राजनैतिक जीवन : पुरातन जैनों का राजनैतिक जीवन आदरणीय और उच्चकोटि का था। इस दृष्टि से यदि हम जैन साहित्य का अवलोकन करें तो स्पष्ट विदित हो जावेगा। उदाहरण के लिये कौटिल्य के अर्थशास्त्र के कुछ राजनैतिक विषय ऐसे थे जिनकी महापण्डित महामहोपाध्याय डा० शाम शास्त्री एम० ए० डी० लिट् ने जैन शास्त्रों की सहायता से सुलझाये। दशवीं शताब्दी में भारत के विभिन्न प्रान्तों की राजनीति में बहुसंख्यक जैन उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त थे। गुजरात में तो जैनों का पूर्ण साम्राज्य था। कोई भी राज का पद ऐसा न था जिस पर जैनों का पूर्ण आधिपत्य न हो। वीर शान्तु, आभू, उदयन, वाग्भट, सज्जन, वस्तुपाल और तेजपाल प्रमुख मन्त्री थे। इनमें से कुछ उच्च कोटि के साहित्यिक ग्रन्थकार थे। मुगल समय में जिनप्रभसूरि श्री जिनचन्द्रसूरि और हीरविजयसूरिजी का सम्बन्ध राज्य से था। सतरहवीं, अठारहवीं शताब्दी में राजस्थान में जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, प्रभृति स्थानों में जैन मन्त्री वगैरह थे। इन अपेक्षाओं से देखा जाय तो आज भारत की राजनैतिक भूमि तैयार है, परन्तु राजनीति में एक समय सक्रिय भाग लेने वाले जैन समाज की सन्तान आज राजनैतिक क्षेत्र से न जाने क्यों भयभीत हो रही है। इसका स्पष्ट कारण तो यही प्रतीत होता है कि अहिंसावाद में विश्वास करने वालों में जनता के प्रति हार्दिक सहानुभूति और त्याग का अभाव है या अधिकतर केवल लक्ष्मी को ही सर्वस्व समझा गया है। राजनीति और जीवन का अभिन्न सम्बन्ध है। वर्तमान समय में जो समाज जाति देश के लिए त्याग एवं उत्सर्ग करने की क्षमता नहीं रखते उनका राजनीतिक क्षेत्र में अस्तित्व बिल्कुल सम्भव नहीं। सच्चा त्याग, दृढ़ मनोबल, कर्मठता, सामयिक अहिंसा, वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धान्त का पालन, देशोन्नति के प्रति सदैव जागृत रहना यही कुछ राजनैतिक तपस्वी के लक्षण हैं। वर्तमान जैन समाज ने यदि इस विषय पर ध्यान न दिया तो निस्सन्देह आगामी राष्ट्र निर्माण में अपना अस्तित्व कायम रखना खतरे से खाली नहीं। हमारा निश्चित मत है और प्राचीन इतिहास भी यही बता रहा है कि जैनियों का पतन ठीक उसी समय से आरम्भ हुआ है जब से राजनीति से समाज ने हाथ खींच लिया।

युगप्रवर और खादी : प्राचीनकालीन भारत में शुद्ध भारतीय वस्त्रों का ही प्रचलन था। आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज की खादी की एक चादर जैसलमेर के बड़े उपाश्रय में सुरक्षित है। इस बात से हमें विशेष शिक्षा लेनी होगी। खादी के साथ राष्ट्रीयता का अभेद्य सम्बन्ध है। अहिंसा और शान्ति के उपासकों को तो अवश्य ही ऐसे वस्त्रों का भोग करना चाहिये जिसका मानस पर भी शुद्ध असर हो, वह असर है खादी में। भारतीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से भी खादी का प्रचार भारतीय उत्थान का कारण है। यदि आप लोगों में जिनदत्तसूरिजी के प्रति श्रद्धा भाव है और उन्हें हृदयङ्गम करें तो खादी का व्यवहार अतिशीघ्र प्रारम्भ होना ही चाहिये। आप लोगों को मालूम होना चाहिये कि ईसवी सन् १७२१ में भारत से लन्दन जो वस्त्र जाते थे इसके उपलक्ष में वहाँ के बुनकरों ने भारी जेहाद उठाकर कहा कि यदि भारतीय कपड़ों का प्रचार यूरोप में होगा तो हमारे द्वारा निर्मित वस्त्र कहाँ बेचे जावेंगे। फल यह हुआ कि अंग्रेजों ने भारतीय वस्त्रों को विलायत जाने से रोका। परन्तु आपलोगों में इतना आत्माभिमान कहाँ? यदि आपलोगों में अपने पूर्वजों के प्रति कुछ सम्मान होता तो आप भी ठीक वैसी ही आवाज उठाते कि विलायती कपड़ों की इस भारत में जरूरत ही क्या है? क्या यहाँ के बुनकर भूखों नहीं मरेंगे? परन्तु जहाँ पर कोरे आत्मिक स्वार्थ का प्रश्न है वहाँ पर इन बातों को स्थान ही कहाँ? जैन मन्दिरों में पूजन के वस्त्रों में भी यदि खादी को स्थान दिया जाय तो भी काफी है, इस युग में खादी पहनने के लिए केवल रुपयों के अतिरिक्त सूत कातने में भी समय का भोग और त्याग की भी बहुत आवश्यकता है।

उपसंहार : उपरोक्त संक्षिप्त विवेचन से फलित होता है कि सूरिजी कालीन भारत और जैन समाज उन्नति के पूर्ण स्थिति में था परन्तु क्या आपको यह अनुभव नहीं होता कि जैन समाज आज पूर्वापेक्षा अवनति में क्यों है। आपलोगों में अपने पूर्वजों के प्रति प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न होनी चाहिये। आज का जैन धर्म और समाज विकृत हो गया है। संगठन नाम की कोई वस्तु न रही। धर्म के नाम पर सम्प्रदायवादों का पोषण हो रहा है। समाज के नाम पर आत्मिक स्वार्थ विकसित हो रहे हैं। स्याद्वाद का स्थान रूढ़ियों ने ले रखा है। स्वाध्याय या उच्च तत्व चिन्तन में सहायक ज्ञान की न जाने आवश्यकता ही क्यों प्रतीत नहीं होती, इस प्रकार के संकुचित वातावरण में जैन समाज परिवेष्टित है। इन सब समस्याओं को सुलझाना होगा। विचार विनिमय का समय चला गया, समय है सक्रिय कार्यकर्त्ताओं का।

जैन पुराण साहित्य

डॉ० कमलेश जैन

'पुराण' भारतीय वाङ्मय की एक स्वतन्त्र विधा है। समग्र रूप से इन्हें 'भारतीय संस्कृति के विश्वकोश' कहा जा सकता है। पुराणों में धर्म-दर्शन का प्ररूपण, काव्य का लालित्य; कथा-साहित्य की रोचकता, इतिहास की तथ्यात्मकता तथा समसामयिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन, राजनैतिक जीवन एवं लोक संस्कृति का अपूर्व एवं सुन्दर समावेश देखा जाता है। अतएव पुराण साहित्य को मात्र मिथक अथवा कथा साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। वस्तुतः पुराण साहित्य भारतीय संस्कृति के अजस्र स्रोत हैं।

वैदिक साहित्य में पुराणों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यहाँ कहा गया है कि इतिहास एवं पुराणों के द्वारा वेदों को समृद्ध करना चाहिए—"इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्।" वैदिक परम्परा में १८ (अठारह) पुराणों के उल्लेख हैं। ये पुराण वेदव्यास द्वारा रचित माने जाते हैं, जो कि वर्तमान में उपलब्ध भी हैं। इन पुराणों के संक्षिप्त-सार रूप में कहा गया है कि अठारह पुराणों में वेदव्यास ने दो ही सिद्धान्तों का प्रमुखता से प्रतिपादन किया है—१. पुण्य, २. पाप। पुण्यार्जन परोपकार से होता है और दूसरों को पीड़ा देने से पापबन्ध होता है—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य बचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

भारतीय पुराणों का अब तक जो विशेष अध्ययन हुआ और उस अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष दिये गये हैं, उनसे जैन पुराणों की प्रकृति और निष्कर्षों में किञ्चित् वैभिन्य प्राप्त होते हैं। अभी तक जैन पुराणों का अन्तःशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन नहीं हुआ है, इसलिए उनकी प्रमुख विशेषताएँ भी प्रकाश में नहीं आ सकी हैं।

बौद्ध परम्परा में वैदिक अथवा जैन परम्परा की तरह पुराण नहीं लिखे गये। यहाँ अनेक जातक कथाएँ अथवा अट्ठकथाएँ लिखी गयी हैं, परन्तु, उन्हें पुराण साहित्य के अन्तर्गत रखा जाना सर्वथा उपयुक्त नहीं है। जातक

कथाओं में तथागत बुद्ध के पूर्व जीवन से सम्बद्ध कहानियाँ हैं और अट्ठकथाओं में त्रिपिटक साहित्य की व्याख्याएँ हैं।

जैन आचार्यों द्वारा, प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश तथा विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में पुराणों/चरित्रग्रन्थों की रचना दीर्घकाल तक होती रही है। वैदिक पुराणों की तरह यहाँ पर संख्या की बाध्यता दिखाई नहीं देती। इसलिए जैन पुराणों की संख्या भी शताधिक है। जैन परम्परा में स्वीकृत त्रेसठ शलाका (श्रेष्ठ) पुरुषों में से एक अथवा एकाधिक शलाका पुरुषों के जीवन चरित्र को आधार बनाकर ये पुराण निर्मित हुए हैं। उपर्युक्त त्रेसठ शलाका पुरुषों के अन्तर्गत २४ (चौबीस) तीर्थंकर, १२ (बारह) चक्रवर्ती, ९ (नव) नारायण, ९ (नव) प्रतिनारायण और ९ (नव) बलभद्र आते हैं।

यद्यपि उपलब्ध अर्धमागधी प्राकृत आगम साहित्य में पुराण पुरुषों—शलाका पुरुषों के जीवन चरित्र विषयक सामग्री प्राप्त होती है, तथापि उसे पुराणों के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

जैन पुराण साहित्य के विषय में प्राचीन उल्लेख दिगम्बर परम्परा के प्राचीन ग्रन्थ षट्खण्डागम की धवला नामक टीका में मिलता है। उससे ज्ञात होता है कि द्वादशांगों में बारहवाँ अंग दृष्टिवाद नामक है। उसके पाँच भेद थे। उन पाँच भेदों में एक भेद प्रथमानुयोग था। इस प्रथमानुयोग के अन्तर्गत पुराण तथा कथात्मक साहित्य समाहित था, जिसे बारह प्रकार से विभाजित किया था। आचार्य वीरसेन ने धवला टीका में प्राचीन गाथाओं को उद्धृत करते हुए बारह प्रकार के पुराणों का विवरण निम्न प्रकार से दिया है—

पढमाणियोगो पंच-सहस्स पदेहि (५,०००) पुराणं वण्णेदि। उक्तं च—

वारसविहं पुराणं जगदिट्ठं जिणवरेहि सव्वेहिं।
तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे रायवंसे य॥
पढमो अरहंताणं विदियो पुण चक्कवट्ठि वंसो दु।
विज्जहराणं तदियो चउत्थयो वासुदेवाणं॥
चारण-वंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्ण-समणाणं।
सत्तमओ कुरुवंसो अट्ठमओ तह य हरिवंसो॥
णवमो य इक्खुयाणं दसमो वि य कासियाण बोद्धवो।
वाइणेक्कारसमो वारसमो णाह-वंसो दु॥

अर्थात् दृष्टिवाद अंग का प्रथमानुयोग अर्थाधिकार पाँच हजार पदों के द्वारा पुराणों का वर्णन करता है। कहा भी है कि—जिनेन्द्र देव ने जगत् में बारह प्रकार के पुराणों का उपदेश दिया है। वे समस्त पुराण जिनवंश और राजवंशों का वर्णन करते हैं। पहला अरहंत—तीर्थंकरों का, दूसरा चक्रवर्तियों का, तीसरा विद्याधरों का, चौथा नारायण-प्रतिनारायणों का, पांचवाँ चारणों का, छठवाँ प्रज्ञा समणों (श्रमणों) का वंश है तथा सातवाँ कुरुवंश, आठवाँ हरिवंश, नववाँ इक्ष्वाकुवंश, दसवाँ काश्यपवंश, ग्यारहवाँ वादियों का वंश और बारहवाँ नाथवंश है। (षट्खण्डागम, धवलाटीका, भाग १, ७७-८०, पृ० ११३)

वर्तमान में जो जैन पुराण प्राप्त होते हैं, वे उपर्युक्त बारह प्रकारों में से मात्र कुछ प्रकारों से ही सम्बन्ध रखते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन समय में जैन परम्परा में विपुल पुराण साहित्य रहा है, आज जिसका कुछ ही भाग उपलब्ध—प्रकाशित है और शेष भाग अनुपलब्ध है, अथवा, अभी प्रकाश में नहीं आ पाया है।

उपलब्ध जैन पुराणों का अन्तःशास्त्रीय अध्ययन भी अपेक्षित है, जिसमें पुराण साहित्य का समुचित मूल्यांकन हो सकेगा और अनेक नये तथ्य प्रकाश में आ सकेंगे।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

वामन ने अपने साथियों से कहा—जब तक राजा के वहाँ जाने का समय नहीं होता है तब तक हम यहाँ बैठकर कथा-कहानी सुनाते हुए समय काटें। साथियों में एक बोला तब हमलोगों को कोई मजेदार कहानी सुनाओ। वामन बोला कथा सुनाऊँ या वृत्तान्त? तब वह बोला, कथा और वृत्तान्त में क्या भेद है? वामन बोला, वृत्तान्त होता है स्व-अनुभव सम्बन्धी कथा और कथा होती है अतीत की लोक प्रचलित कथा। तब वह बोला, तब वृत्तान्त ही सुनाओ। वामन ने कहा, तब सुनो—

इस भरतक्षेत्र में ताम्रलिप्त नामक एक नगर है। वहाँ ऋषभदत्त नामक एक गुणवान वणिक रहते हैं। एक बार वे कार्यवश पद्मिनीखण्ड नगर में आए। वहाँ उन्होंने सागरदत्त की कन्या प्रियदर्शना को देखा और उसके साथ अपने पुत्र वीरभद्र का विवाह स्थिर किया। वीरभद्र प्रियदर्शना का पाणिग्रहण कर उसके साथ सांसारिक सुख भोगने लगा। एक दिन रात को सोयी हुयी समझकर उसने प्रियदर्शना को जगाया। इससे क्रुद्ध होकर वह बोली, मुझे तंग मत करो, मेरा शिर दुख रहा है। वीरभद्र बोला, इसमें किसका दोष है? प्रियदर्शना ने प्रत्युत्तर दिया, तुम्हारा। वीरभद्र ने कहा मेरा दोष कैसे है? वह बोली इतनी रात को जों तुम इतना बकबक कर रहे हो इसीलिए। तब वीरभद्र बोला, अच्छा अब मैं तुम्हें अधिक तंग नहीं करूँगा—ऐसा कहकर उससे प्यार किया। उसके वाद जब वह सचमुच ही सो गयी वीरभद्र उसे छोड़कर अन्यत्र चला गया।

यह कहकर वामन शीघ्रता से उठा। बोला, अरे, राज सभा में जाने का समय हो गया है। उसके उठने पर प्रियदर्शना ने उससे पूछा, तब बताओ वीरभद्र अभी कहाँ है? तुम तो निश्चय ही जानते होगे? वामन बोला, मेरे कुल में कलंक लग जाएगा इसलिए मैं दूसरे की स्त्री से बात नहीं करता। प्रियदर्शना बोली, तुम्हारा व्यवहार उच्चकुल के जैसा ही है। किन्तु कुलीन व्यक्ति का प्रथम गुण होता है नम्रभाव से उत्तर देना। मैं कल उत्तर दूँगा कहकर वह तुरन्त चला गया। राजा के लोगों ने भी जो जो घटित हुआ राजा को कह सुनाया।

दूसरे दिन सुबह वामन पूर्व की भाँति ही साध्वी सुव्रता के उपाश्रय में गया और सुनने को उत्सुक लोगों को आगे सुनाने लगा।

वीरभद्र ने नगर परित्याग कर गुटिका भक्षण कर कृष्णवर्ण धारण कर लिया और विभिन्न देशों में भ्रमण करता हुआ सिंहल द्वीप पहुँचा। वहाँ वह रत्नपुर के श्रेष्ठी शंख की दुकान पर जाकर बैठ गया। उसका इतिवृत्त सुनकर श्रेष्ठी उसे अपने घर ले गया और पुत्र की तरह उसे रखने लगा। वहाँ वीरभद्र नगरवासियों के सन्मुख अपनी कला का प्रदर्शन करता हुआ उनकी प्रशंसा जुटाते हुए सुख पूर्वक रहने लगा। एक दिन वीरभद्र श्रेष्ठी कन्या के साथ स्त्री वेश में राजकन्या अनंगसुन्दरी के प्रासाद में गया। अपनी कला का प्रदर्शन कर और अपना परिचय देकर उसने राजकन्या से विवाह कर लिया। उसकी कला ने अनंगसुन्दरी को मुग्ध कर दिया था। इसलिए उसी के कहने पर उसके पिता ने वीरभद्र से उसका विवाह कर दिया था। बहुत दिनों तक वह उसके साथ सांसारिक सुख भोग करता रहा। बाद में जब वह उसे लेकर ताम्रलिप्त लौट रहा था तब एक दिन तूफान में फँसकर उसका जहाज चूर-चूर हो गया।

इतनी कहानी सुनाकर वह उठ खड़ा हो गया। बोला, अब मेरा राज सभा में जाने का समय हो गया है। सेवा नहीं करने पर सेवकों की जीविका नहीं रहती। उसे उठते देखकर अनंगसुन्दरी व्यग्रता पूर्वक बोली, वीरभद्र अब कहाँ है? कल बताऊँगा कहकर वह वामन राजप्रासाद में चला गया। राज कर्मचारियों ने गत कल की भाँति जो कुछ घटा था राजा को कह सुनाया।

तृतीय दिन वामन पुनः उपाश्रय में आया और बोलने लगा, जहाज भग्न हो जाने पर वीरभद्र एक काष्ठ फलक का सहारा लेकर जल में प्रवाहित होने लगा। उसी अवस्था में विद्याधर राज रतिवल्लभ ने उसे देखा तो जल से बाहर निकाला और अपने निवास स्थान बैताढ्य पर्वत पर ले गए। जब वे उसे समुद्र से उठा रहे थे तो वीरभद्र ने जिस गुटिका को खाकर कृष्ण वर्ण धारण किया था उसे हटा लिया। अतः वह पुनः ताम्रलिप्त की तरह गौरवर्णीय हो गया। रतिवल्लभ के पूछने पर उसने अपना नाम बुद्धदास बताया और सिंहल द्वीप में रहनेवाला। रतिवल्लभ के आग्रह पर वीरभद्र ने उनकी कन्या रत्नप्रभा से विवाह किया और सांसारिक सुख भोग करने लगा। एक दिन वह रत्नप्रभा को लेकर पद्मिनीखण्ड घूमने निकला और पानी पीकर आता हूँ कहकर उसे उपाश्रय के सन्मुख छोड़कर अन्यत्र चला गया।

ऐसा कहकर 'मैं जाता हूँ' कहते हुए उठा। तब रत्नप्रभा ने पूछा, वामन, बुद्धदास अभी कहाँ है? कल बताऊँगा कहकर वह चला गया।

इस कहानी से प्रियदर्शना, अनंगसुन्दरी और रत्नप्रभा बड़ी प्रसन्न हुयी कि उनका पति एक ही हैं। इतना कहकर गणधर कुम्भ श्रेष्ठी सागर से बोले, श्रेष्ठिन्, यह वामन ही तुम्हारा जँवाई है और तीनों कन्याओं का पति। कौतूहल के लिए ही वह उसको छोड़कर चला गया था।

तब वामन गणधर कुम्भ को वन्दना कर बोला, भगवन्, ज्ञान दृष्टि से आपने जो कुछ वर्णन किया वह वैसा ही है।

द्वितीय याम उत्तीर्ण होने पर गणधर कुम्भ ने अपनी देशना समाप्त की। क्योंकि देशना का समय इतना ही होता है। तब श्रेष्ठी सागरदत्त वामन को संग लेकर सानन्द उपाश्रय लौटा। वामन को आते देखकर तीनों विरहिणियाँ व्यग्रता पूर्वक उसे देखने आयीं। भला पति का संवाद सुनकर कौन व्याकुल नहीं होता?

तब सागरदत्त बोले, ये तुम तीनों के ही पति हैं। वे बोली, सो कैसे? इस पर सागरदत्त ने सारी घटना उन्हें कह सुनायी। यह सब सुनकर वे तीनों एवं साध्वी प्रमुखा आश्चर्य चकित हो गयीं। फिर वामन ने भी भीतर जाकर अपना वामन रूप परित्याग किया। पहले तो उसने वही रूप धारण किया जिसमें अनंग सुन्दरी ने उसे देखा था। तदुपरान्त कृष्णवर्ण परित्याग कर गौरवर्ण धारण किया। अब तो तीनों ही ने उसे पतिरूप में पहचान कर घेर लिया।

साध्वी प्रमुखा ने तब उससे पूछा, आपने ऐसा क्यों किया? प्रत्युत्तर में वीरभद्र बोला, कौतुक के लिए। कौतुक के लिए ही मैंने अपना घर और इनका परित्याग किया था।

तब साध्वी प्रमुखा बोली, पुण्यवान दूर देश में, विदेश में, अरण्य में वा पर्वत पर यहाँ तक कि समुद्र में एवं अप्रीतिकर स्थानों में कहीं भी रहे उसे घर का सा सुख ही प्राप्त होता है। सुख सत्पात्र दान का फल है। इन्होंने किस सत्पात्र को दान दिया था यह तो जिनेश्वर अर स्वामी के सिवा कोई बता नहीं सकता। अतः हम चलकर उनसे पूछे। तब साध्वी प्रमुखा, सागरदत्त और अपनी तीन पत्नियों सहित वीरभद्र अर स्वामी के पास गये और उन्हें यथाविधि वन्दन कर उनके सन्मुख बैठ गये। सुव्रता साध्वी ने भगवान से पूछा—भगवन्, वीरभद्र ने पूर्वभव में ऐसा क्या किया था जिसके फलस्वरूप इस जन्म में उसे यह सुख प्राप्त हुआ? अर स्वामी बोले, मेरे इस भव के पूर्व

तृतीय भव में मैं जब पूर्व विदेह के रत्नपुर का राज्य परित्याग कर दीक्षित होकर प्रव्रजन कर रहा था तब उस समय वीरभद्र ने श्रेष्ठीपुत्र जिनदास के रूप में भक्ति भाव से मेरे चार मास के उपवास का पारना कराया था। उसी पुण्य के फल से वह मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म लोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यवकर जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में एक बनिक श्रावक के रूप में जन्मा और श्रावक के व्रतों का निष्ठा पूर्वक पालन किया। वहाँ का आयुष्य शेष होने पर इसने वर्तमान में वीरभद्र के रूप में जन्मग्रहण किया है। पुण्यानुबन्धी पुण्य के कारण उसने इस जन्म में यह सुख प्राप्त किया है। पुण्य ही मनुष्य के सब कामों में काम आता है।

ऐसा कहकर अनेकों को प्रतिबोध देकर अर स्वामी संसार के अन्धकार को दूर करने के लिए अन्यत्र प्रव्रजन कर गए। वीरभद्र बहुत दिनों तक सांसारिक सुख का भोग कर मृत्यु के पश्चात् पुण्य रूपी रथ पर चढ़कर स्वर्ग गए।

भगवान अर स्वामी के संघ में ५०००० साधु, ६०००० साध्वियाँ, ६१० चौदह पूर्वधारी, २६०० अवधि ज्ञानी, २५५१ मनः पर्यायज्ञानी, २८०० केवली, ७३०० वैक्रिय लब्धिधारी, १६०० वादी, १८४००० श्रावक और ३७२००० श्राविकाएँ थीं। भगवान अरनाथ तीन वर्ष कम २१००० वर्ष तक इस पृथ्वीपर केवली रूप में विचरण करते रहे।

अपना निर्वाण समय निकट जानकर वे १००० मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर्वत पर गए और वहाँ अनशन ग्रहण किया। एक मास पश्चात् अगहन महीने की शुक्ला दसमी को चन्द्र जब रेवती नक्षत्र में अवस्थान कर रहा था तब उन १००० मुनियों सहित निर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान २१००० वर्ष कुमारावस्था में २१००० वर्ष आंचलिक राजा के रूप में, २१००० वर्ष चक्रवर्ती रूप में, २१००० वर्ष व्रत पर्याय में इस प्रकार कुल ८४००० वर्ष तक मृत्यु लोक में अवस्थित रहे। भगवान अरनाथ का निर्वाण भगवान कुन्थुनाथ के निर्वाण के १००० करोड़ वर्ष कम एक चतुर्थ पल्य के बाद हुआ। इन्द्रादि देव वहाँ आए और भगवान अरनाथ एवं अन्य मुनियों की देह का संस्कार कर उनका निर्वाण महोत्सव किया।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तृतीय सर्ग

अब, भगवान अरनाथ के शासन काल में जिन षष्ठ बलदेव, षष्ठ वासुदेव और प्रतिवासुदेव बलि ने जन्म ग्रहण किया उनका वर्णन करता हूँ।

विजयपुर में सुदर्शन नामक एक राजा थे। वे चन्द्र की भाँति सुन्दर थे और पृथ्वी के लिए आनन्द स्वरूप थे। मुनि दमधर से जैन सिद्धान्त श्रवण कर उनके मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुआ। अतः उन्होंने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। दीर्घ समय तक तप, आराधना कर वे सहस्रार स्वर्ग में देव रूप में उत्पन्न हुए।

इसी भरतक्षेत्र में पोतनपुर नामक एक नगरी थी। कमल के लिए जिस प्रकार उदीयमान सूर्य हैं उसी प्रकार मित्रों के लिए मित्र रूप प्रियमित्र नामक एक राजा वहाँ राज्य करते थे। एक समय सुकेतु, नामक एक बलवान राजा ने उनकी पत्नी का अपहरण कर लिया। इस अपमान से वितृष्ण होकर उन्होंने मुनि वसुभूति से दीक्षा ग्रहण कर ली। पत्नी के हरण से दुखी होकर उन्होंने कठोर तप कर यह निदान किया कि वे उसके प्रभाव से पत्नी का अपहरण करने वाले की हत्या करने में समर्थ बनें। उपवास तो किया किन्तु इस निदान की आलोचना किए बिना ही मृत्यु प्राप्त कर माहेन्द्र देवलोक में शक्तिशाली देव रूप में जन्म ग्रहण किया।

वैताढ्य पर्वत के अरिंजय नामक नगर में मेघनाद नामक एक राजा राज्य करते थे। चक्रवर्ती सुभूम ने उन्हें वैताढ्य पर्वत की उभय श्रेणी पर आधिपत्य प्रदान किया। उनकी कन्या पद्मश्री के साथ चक्रवर्ती सुभूम का विवाह हुआ। सुकेतु के जीव ने भव भ्रमण करते करते उसी नगरी में मेघनाद के परिवार में प्रति वासुदेव बलि के रूप में जन्म ग्रहण किया। कृष्ण वर्ण और पाँच हजार वर्षों का आयुष्य लेकर छब्बीस धनुष दीर्घ बलि ने त्रिखंड भरत का आधिपत्य प्राप्त किया।

उसी जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में पृथ्वी के अलंकार स्वरूप चक्रपुर नामक एक नगर था। उस नगर के राजा का नाम था महाशिर। द्वितीय लोकपाल की भाँति उन्होंने ख्यातिमान राजाओं का मस्तक झुकाया था। इस राजन्य श्रेष्ठ राजा का चारित्र अनिन्द्य था। श्री के साथ शक्ति के योग की तरह उनमें बुद्धि के साथ विवेक संयुक्त था। स्वयम्भूरमण समुद्र के विभिन्न जीवों की तरह ऐसी कोई कला नहीं थी जो उन्हें अधिगत नहीं थी। उनके

राज्य में तस्करों द्वारा अपहरण नहीं होता। वे तो केवल महामना लोगों के मन का अपहरण करते थे। किसी को आनन्दित कर, किसी को भीत कर वे सज्जन और दुर्जन दोनों के ही मन में अवस्थित थे।

उनकी रानी का नाम था वैजयन्ती। वह रूप में अप्सरा को भी पराजित करती थी। उनकी दूसरी रानी लक्ष्मी स्वरूपा लक्ष्मीवती थी।

राजा सुदर्शन का जीव सहस्रार विमान से च्यवकर अग्रमहिषी वैजयन्ती के गर्भ में अवतरित हुआ। बलदेव के जन्मसूचक चार महास्वप्नों को देखकर वे आनन्दित हुयीं और श्रेष्ठ भ्रूण धारण किया। समय पूर्ण होने पर उन्होंने पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति कलंकहीन पुत्र को जन्म दिया। २६ धनुष दीर्घ उस जातक का नाम रखा गया आनन्द।

प्रिय मित्र का जीव चतुर्थ स्वर्ग माहेन्द्र से च्यवकर रानी लक्ष्मीवती के गर्भ में उत्पन्न हुआ। वासुदेव के जन्मसूचक सात स्वप्नों को देखकर वह आनन्दमना बनी गर्भ का पोषण करती रही। यथा समय उसने कृष्णवर्णीय एक पुत्र को जन्म दिया। २६ धनुष दीर्घ नव जातक का नाम रखा गया पुरुष पुण्डरिक।

गरुड़ध्वज और तालध्वज दोनों भाई नील और पीत वस्त्र धारण कर पिता की इच्छा की तरह बड़े होने लगे। वे सहज रूप से चलते, फिर भी पृथ्वी काँप उठती। जब वे छोटे थे तभी धात्रियाँ उन्हें उठा नहीं पाती थीं। क्रमशः उन्होंने नयनाभिराम यौवन प्राप्त किया और समस्त कलाओं में पारंगत हो गए। राजेन्द्रपुर के राजा उपेन्द्रसेन ने अपनी कन्या पद्मावती का विवाह वासुदेव के साथ कर दिया। प्रतिवासुदेव बलि यह ज्ञात कर कि पद्मावती अनंग-पत्नी रति से भी अधिक सुन्दरी है उसका अपहरण करने आया। आनन्द और पुण्डरीक शक्ति मदमत्त बलि की शक्ति की उपेक्षा कर उसके सम्मुखीन हुए। तभी उन्हें अस्त्र-शस्त्र, सारंग धनुष, हल आदि देवताओं से इस प्रकार तत्क्षण प्राप्त हुए मानों उनकी आयुध शाला में सुरक्षित रखे हुए हों। बलि की अधिक शक्तिशाली सैन्य द्वारा अपनी सेना को पराजित होते देखकर वे क्रुद्ध होकर रथ पर चढ़े और आनन्दित हृदय से युद्ध में अग्रसर हुए। वीरों के मन में युद्ध क्षेत्र आनन्द ही उत्पन्न करता है। पुण्डरीक ने पांचजन्य शंख बजाया। उस शंख के महानाद से भयभीत बनी बलि की सेना समुद्र से समुद्र-दानवों की पलायन की भाँति उस युद्ध क्षेत्र से पलायन कर गयी। तदुपरान्त उन्होंने अपने शारंग धनुष पर टंकार दिया। इससे

अवशेष सेना भी टंकार के निर्घोष से भीत होकर रण स्थल से भाग छूटी। तब बलि जिस प्रकार मेघ वारिवर्षण करता है उसी प्रकार वाणों की वर्षा कर युद्ध में अग्रसर हुआ। पुण्डरीक बलि के वाणों को काट डालता बलि पुण्डरीक के। अपने वाणों के नष्ट हो जाने से बलि ने क्रुद्ध होकर चक्र धारण किया और 'यह आ गया तेरा अन्त'—कहता हुआ उस चक्र को घुमाकर वासुदेव पुण्डरीक पर निक्षेप किया। चक्र के नाभि स्पर्श करने के कारण पुण्डरीक क्षणभर के लिए बेहोश हो गए। होश आते ही वे उठ खड़े हुए और उसी चक्र को धारण कर 'ले यह हुआ तेरा अन्त'—कहते हुए चक्र बलि पर निक्षेप किया। चक्र के आघात से बलि का मस्तक कट गया।

अग्रज आनन्द के साथ पुण्डरीक ने दिग्विजय के लिए प्रयाण किया और शत्रु राजाओं को पराजित कर अर्द्ध चक्री के रूप में सिंहासन पर आरूढ़ हुए। वासुदेव ने तराजू की भाँति सहज ही कोटिशिला को उठा लिया। अपनी आयुष्य के ६५ हजार वर्ष अतिक्रान्त होने पर उनकी मृत्यु हो गयी। अपने क्रूर कर्मों के कारण मरकर वे छठी नरक में गए। पुण्डरीक ने २५० वर्ष युवराज रूप में, २५० वर्ष राजा रूप में, ६० वर्ष दिग्विजय में और ६४४४० वर्ष अर्द्ध चक्री रूप में व्यतीत किए।

आनन्द का आयुष्य ८५ हजार वर्षों का था। भाई की मृत्यु से एकाकी और आनन्द हीन हो जाने से उनके लिए दिन काटने मुश्किल हो गए। अतः वे संसार से विरक्त होकर मुनि सुमित्र से दीक्षित हो गए। शुद्धता पूर्वक चारित्र पालन करते हुए और ज्ञान की आराधना कर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया और आनन्द के निवास रूप अक्षय सिद्धि पद के अधिकारी बने।

तृतीय सर्ग समाप्त

संकलन

।। प्राकृत भाषा और उसका साहित्य ।।

प्राकृत भाषा और उसका साहित्य जन सामान्य की संस्कृति से समृद्ध है। स्वाभाविक रूप से प्राकृत भाषा जनता से सम्पर्क रखने का एक आदर्श साधन बन जाती है। इसीलिए प्राकृत भाषा को समुचित आदर प्रदान करते हुए तीर्थंकर महावीर, सम्राट अशोक एवं खारवेल जैसे महापुरुषों ने अपने सन्देशों के प्रचार-प्रसार के लिए प्राकृत का उपयोग किया है। जैन आगमों में प्राकृत का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, किन्तु वेदों की भाषा में भी प्राकृत भाषा के तत्वों का समावेश है। भारत के अधिकांश प्राचीन शिलालेख प्राकृत में है। प्रारम्भ से ही इस देश के नाटकों में प्राकृत का प्रयोग होता रहा है। ये सभी विवरण हमें सूचना देते हैं कि इस देश की जनता की स्वाभाविक भाषा—मूल भाषा प्राकृत रही है। समय-समय पर सामान्य जन की विभिन्न बोलियाँ साहित्यिक प्राकृत का रूप भी ग्रहण करती रही हैं। प्राकृत से अपभ्रंश एवं अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है।

जैन श्रमण प्राकृत की विभिन्न बोलियों का अच्छा ज्ञान रखते थे। उनके धार्मिक उपदेश सदैव प्राकृत में होते थे। उनके द्वारा लिखित महत्वपूर्ण दार्शनिक एवं कथात्मक साहित्य के काव्य, नाटक, स्तोत्र, उपन्यास आदि ग्रन्थ सरल एवं सुबोध प्राकृत में हैं। इसके अतिरिक्त कथा, दृष्टान्त-कथा, प्रतीक-कथा, लोक-कथा, आदि ग्रन्थ भी प्राकृत में लिखे गए हैं जो मानव मूल्यों और नैतिक आदर्शों की सही शिक्षा देकर व्यक्ति को श्रेष्ठ नागरिक बनाते हैं। प्राकृत में लिखे गए सबसे प्राचीन ग्रन्थ आगम कहे जाते हैं। इनमें जैन धर्म एवं दर्शन के प्रमुख नियम वर्णित हैं और विभिन्न विषयों पर अनेक सुन्दर कथाएँ दी गयी हैं। आगम और उसका व्याख्या साहित्य प्राकृत कथाओं का अमूल्य खजाना है। प्राकृत लेखकों के द्वारा कुछ महत्वपूर्ण धर्मकथा ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, जो कथाओं के कोश हैं। प्राकृत में कई प्रकार के काव्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। कई कवियों एवं अलंकार शास्त्रियों ने अपने लाक्षणिक ग्रन्थों में प्राकृत की सैकड़ों गाथाओं को उद्धृत कर उनकी सुरक्षा की है।

प्राकृत साहित्य के इस विशाल समुद्र के अवगाहन से वह अनुपम एवं बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है जो भारत के सांस्कृतिक इतिहास का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम है। देश के स्वर्णयुग की अवधि में कई साहसी समुद्र यात्राएँ व्यापारियों द्वारा की जाती थीं। उनके विस्तृत विवरण प्राकृत साहित्य में उपलब्ध हैं। ये समुद्र यात्राओं के वृत्तान्त भारत के गौरव को रेखांकित करते हैं कि उस समय विभिन्न देशों के साथ हमारे सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। प्राकृत साहित्य के अध्ययन से हमें अनेक कलाओं हस्तशिल्प, औषधि-विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, धातु-विज्ञान, रसायन-विज्ञान आदि की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। वास्तव में प्राकृत ग्रन्थों में उपलब्ध विभिन्न वृत्तान्त आचार-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, जीव-विज्ञान एवं राजनीति-शास्त्र आदि के क्षेत्र में नवीन तथ्य प्रस्तुत करते हैं। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्राकृत-अध्ययन के भाषात्मक, सांस्कृतिक पक्ष को विभिन्न आयामों द्वारा आज उद्घाटित करने की आवश्यकता है। महत्वपूर्ण कार्य किसी समर्पित समुदाय एवं संस्थान द्वारा ही अच्छे ढंग से किया जा सकता है।

—डा० प्रेम सुमन जैन

प्राकृत विद्या, जुलाई-दिसम्बर १९९०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

जैन जर्नल ॥ जनवरी १९९१

इस अंक में है 'Jaina Influence in the Formation of Dvaita Vedanta (Robert J. Zydenbus), 'Jaina Concept of Person—A Textual Study of Samayasara of Acarya Kundakunda' (B. Vincent Sekhar), 'The Story of Carudatta: With Special Reference to Jaina Literature' (Hampa Nagarajaiah), 'His Name Jina' (Leona Smith Kremser), 'A Search for the Possibility of Non-violence and Peace' (Dr. Sagarmal Jain), 'Ancient Jaina Centres on the Banks of Kansai'(Sudhin De).

तुलसी प्रज्ञा ॥ मार्च १९९१

इस अंक में है 'भिक्षु प्रतिमा' (साध्वी अशोकश्री), 'विनीत-अविनीत की भेद-रेखा' (समणी कुसुम प्रज्ञा), 'कालिक एवं उत्कालिक सूत्र' (समणी मंगल प्रज्ञा), 'पाश्चात्य सन्दर्भ में जैन प्रमाण की सत्यता की कसोटी' (डा० बच्छराज दूगड़), 'प्राचीन प्राकृत में मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यंजनों के प्रायः लोप का औचित्य' (डा० के० आर० चन्द्र), 'भारतीय दर्शनों का प्राण—अहिंसा' (रतनलाल जैन), 'आध्यात्मिक विकास में सहायक मंत्र—जैन परम्परा के सन्दर्भ में' (कमला जोशी), 'जैन साहित्य में अशोक संवत्सर की खोज' (अभय प्रकाश जैन), 'उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित पंचमहाव्रत' (डा० महेन्द्रनाथ सिंह), 'कल्की व सन्द्रकुपतस्' (डा० देवसहाय त्रिवेद), 'Fourfold Aspects of Jain Religion as described by Acarya Hemacanra' (Helen M. Johnson), 'Advaita Vedanta in Pt. Madhusudan Ojha's Brahma Siddhanta' (Dr. Ratna Purohit), 'Jainism and Ecology' (C. N. Singhvi).

प्राकृत विद्या ॥ जुलाई-दिसम्बर १९९०

इस अंक में है 'भारतीय भाषाओं के विकास में प्राकृत-अपभ्रंश का योगदान' (डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री), 'प्राकृत भाषा का सांस्कृतिक अध्ययन' (डा० नेमिचन्द्र शास्त्री), 'प्राकृत अध्ययन का विकास एवं भविष्य'

(डा० प्रेम सुमन जैन), 'प्राचीन प्राकृत में 'ङ' और 'ञ' के अनुस्वारमें परिवर्तन की समीक्षा' (डा० के० आर० चन्द्र), 'आत्मवाद और आचार्य कुन्दकुन्द' (डा० रञ्जन कुमार), 'विदेशों में जैन धर्म : स्थिति और प्रगति' (डा० शेखरचन्द्र जैन), 'कतिपय महत्वपूर्ण प्राकृत पाण्डुलिपियाँ' (डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल), 'Recent Studies on Prakrit Narratives in the West' (Dr. Phyllis Granoff).

शोधादर्श ।। जनवरी १९९१

इस अंक में है 'गुरुगुण कीर्तन—शिवकोटि' (रमाकान्त जैन), 'विजयवर्गीयान्वय' (रामजीत जैन), 'भट्टाकलंककृतलघीयस्त्रय : एक दार्शनिक अध्ययन' (हेमन्त कुमार जैन), 'सुभाषित रत्नसन्दोह—नैतिक शिक्षाओं का अपूर्व भण्डार' (डा० सुषमा जैन), 'मानव या पशु' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'आधुनिक युग के आद्य शिक्षाविद् राजा शिव प्रसाद (जैन) सितारे हिन्द' (अजित प्रसाद जैन), '२१वीं सदी में जैन धर्म की भूमिका' (डा० शशिकान्त), 'राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जैन प्रतिमाएँ' (डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी), 'Whom do the Jainas Worship' (B. Richhab Das).

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253

Vol. XV No. 1 **TITTHAYARA** **May 1991**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73